Chap-4

अध्याय-चतुर्थ :

राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में : प्रेमचंद के नाटकों एवं एकांकी के पात्र

क-प्रेमचंद के नाटकों में निरुपित समस्याएँ

ख-प्रेमचंद के एकांकी में निरुपित समस्याएँ

ग- राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के पात्र

नाटककार प्रेमचंद का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जहाँ इन्होंने एक ओर ग्रामीण परिवेश का दर्शन कराया है तो वहीं दूसरी तरफ गाँवों में सभ्य और सुशील कहे जाने वालों द्वारा अनाचार, पाप, क्रूरता, कुटिलता, धूर्तता, किसानों की दुरावस्था, छोटे-छोटे कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार और शोषण के चित्र हैं, तो इससे भी बढ़कर उन्होंने आधुनिक कहे जाने वाले सभ्य समाज, विशेषतः मध्य श्रेणी के कहे जाने वाले व्यक्तियों जमींदारों, थानेदारों, पुलिसवालों, रईसों की कृत्रिमता, मिथ्याचार,स्वार्थांधिता अभिनय, दुराचार, वासना, लोलुपता का पर्दाफाश किया है। निर्मम यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रेमचंद ने हमारे समाज के सड़े-गले यानि उपेक्षित वर्गों पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी।

किसी साहित्यकार की जीवन दृष्टि अपने वंशानुक्रम प्रभाव, संस्कार, संस्कृति, अपने चारों ओर के वातावरण, जीवन की प्रमुख घटनाओं, शिक्षा, अध्ययन, अनुभव और चिंतन के आधार बनती है। प्रेमचंद के जीवन दर्शन के भी यही तत्व थे। निम्न मध्यवर्गीय परिवार में जन्में प्रेमचंद की शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फ़ारसी के माध्यम से हुई, जो कि प्रधानतः मुसलमानों की भाषा थी। अतः प्रेमचंद इस्लामी संस्कृति से बचपन में ही परिचित हो चुके थे। जाति से श्रीवास्तव होने के नाते वे परम्परागत लेखकों की जाति-कायस्थों से संबंधित थे। उनके गरीब पिता मुंशी का पेशा करते थे और मुगल अदालत से घनिष्ठ संबंध होने के कारण उनके पूर्वजों ने इस्लामी और फ़ारसी संस्कृति के तत्त्वों को अपना लिया था। यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात थी, जिसने हिन्दू-मुस्लिम एकता के संबंध में प्रेमचंद को अपना दृष्टिकोण निश्चित करने में सहायता दी।[1]

मूलतः कथाकार प्रेमचंद ने अपनी प्रारम्भिक रचना उपन्यास या कहानी से न करके बल्कि एक नाटक से की थी। जब प्रेमचंद जी 13 या 14 वर्ष की अवस्था

के थे तभी उन्होंने "होनहार विरवान के चिकने-चिकने पात" नामक एक नाटक लिखा था जिसमें उन्होंने अपने दूर के रिश्ते के मामा के अपनी साहित्यिक रचना के लिए यहीं से प्लाट मिला था। उनके मामा इस नाटक को लेकर गायब हो गए। इसी कारण से पाठक उनकी पहली रचना को पढ़ने से वंचित रह गए। प्रेमचंद ने इसी घटना का जिक्र अपने "गोदान" उपन्यास में मातादीन के रूप में किया है। नाटक के गायब होने की घटना को प्रेमचंद "मेरी पहली रचना" शीर्षक से संस्मरण भी है। दो दशक बाद किशोरावस्था की चाहत पुनः पूरी करने हेतु नाटक की दुनिया में अपना कदम बढ़ाते हैं। प्रेमचंद जी ने कुल तीन नाटक लिखे हैं - संग्राम, कर्बला और प्रेम की वेदी। परन्तु मैं 'प्रेम की वेदी' को नाटक न मानकर एकांकी के रूप में इसका विश्लेषण कर रही हूँ। क्योंकि 'प्रेम की वेदी' का कथानक बहुत ही छोटा हैं और इसका मंचन भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। संवादों की दृष्टि से भी बहुत ही छोटा है। संग्राम नाटक 1923 में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से प्रकाशित हुआ। इस नाटक को उन्होंने 1922 में ही लिखा था किन्तु इस नाटक को लिखने में जून 1922 तक व्यस्त थे।

16 जून 1922 को अपने गुरु मुंशी दयानारायन निगम को पत्र में लिखा - "आजकल एक ड्रामा लिखनें और अपने घर की तामीर में ऐसा मशरूफ हूँ कि कोई किस्सा लिखने का मौका न पा सका।"[2] यह तय है कि यह 1922 तक लिखा जा चुका था। क्योंकि 1923 में छप जाने के बाद ही उन्होंने 1923 में ही कर्बला पर भी काम करना शुरु कर दिया था। 1923 के शुरुआत से ही कर्बला लिखने के लिए अपने मस्तिष्क में बैठा चुके थे। निगम जी को 14 अगस्त 1923 में लिखे एक पत्र में - "कर्बला के मुताल्लिक जनाब ख्वाजा साहब ने मुझे एक किताब दिखा थी जिसमें मरासी मर्सियों के इन्तखाब थे।"[3]

इसी के आस-पास सितम्बर से कर्बला पर लिखना शुरु कर दिया जो 1924 फरवरी के शुरु में ही लिखकर तैयार हो गई इसके विषय में निगम जी को पत्र लिखते हुए उन्होंने 17 फरवरी 1924 को लिखा - "मैंनें इधर पाँच महीनों में अपना नाबिल रंगभूमि के साथ एक ड्रामा लिखा है। नाम है-कर्बला"[4] अर्थात् सितम्बर 1923 से कर्बला का लेखन शुरू हुआ जो 1924 के जनवरी के अंत या 17 फरवरी तक लिखकर तैयार हो गई। इसके तुरंत बाद इसे छपने के लिए प्रेस में दे दिया। 8 जुलाई 1924 तक यह छपी नहीं थी। "मेरे रुपए, कर्बला, मनमोदक,

सुघड़ बेटी और सुशीलकुमारी इन चार किताबों की तवाअत और तैयारी में फँसे हैं।"[5] जुलाई में छपने के पहले ही इस पर काफी कुछ आलोचनाएं हो चुकी थीं- जमाना कार्यालय में। जिनका उत्तर प्रेमचंद ने दिया था।

आलोचना के विषय में उन्होंने 22 जुलाई 1924 को लिखा - "यह ड्रामा तारीखी होने के साथ-ही-साथ पॉलिटिकल भी है। यह ड्रामा महज पढ़ने के लिए लिखा गया था, खेलने के लिए नहीं।"[6] आलोचना होने तथा उसका उत्तर देने के पहले या बाद में भी यह पुस्तक सरस्वती में छप नहीं सकी। काफी परेशानियों का सामना करने के बाद यह नवम्बर 1924 को गंगा पुस्तकमाला से छप सकी।

उर्दू में कभी कर्बला नहीं छप पाया। पर जमाना में उसका उर्दू अनुवाद जुलाई 1926 से 1928 तक क्रमशः प्रकाशित हुआ।

इसके बाद उनकी एकांकी 'प्रेम की वेदी' 1933 में सरस्वती प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसका लेखन 1932 में हुआ था और पुस्तक 1933 के मार्च-अप्रैल तक छप गई थी क्योंकि जैनेंद्र को 27 मई 1933 को उन्होंने लिखा था - "पुस्तक का हाल मत पूछों। 'प्रेम की वेदी' और फाँसी का महीनों से विज्ञापन हो रहा है पर मुश्किल से दस आर्डर आए होंगे।"[7]

प्रेमचंद ने ऐसे नाटक लिखे जो सिर्फ पढ़ने योग्य हों, मंचित या अभिनय योग्य नहीं। 26 दिसम्बर 1934 को इन्द्रनाथ मदान को लिखे गए पत्र में उन्होंने स्पष्ट किया है कि - "नाटक का महत्त्व समाप्त हो जाता है यदि उसको खेला न जाए। रंगमंच के नाम पर मुर्दा पारसी स्टेज है जिसके नाम से मुझे हौल होता है। इसके अलावा मैं कभी नाटक की टेकनीक और रंगमंच की कला के संपर्क में नहीं आया। इसलिए मेरे नाटक सिर्फ पढ़े जाने के लिए थे। अब भी मुझे उम्मीद है कि एक-दो नाटक लिखूँगा।"[8] यही उद्देश्य कर्बला की भूमिका में उन्होंने प्रकट किया तथा निगम जी को लिखे गए पत्रों में भी।

इस आधार पर प्रेमचंद को एक सफल नाटककार नहीं कह सकते परन्तु उनके नाटकों में थोड़ी-बहुत काँट-छाँटकर करके उसे नाट्य अभिनय के योग्य बनाए जा सकते हैं।

प्रेमचंद के नाटकों में निरुपित समस्याएँ

प्रेमचंद मूलतः कथाकार के रूप में थे लेकिन कथाकार होने के साथ-ही-साथ में पत्रकार, नाटककार और अनुवादक भी थे। इतना ही नही प्रेमचंद ने आधा दर्जन पुस्तकें बच्चों के लिए भी लिखा है। प्रेमचंद ने विदेशी नाटकों का अनुवाद भी किया है।

प्रेमचंद का प्रतिनिधि नाटक 'संग्राम' हैं। इस नाटक में गाँव और सभ्य समाज का तुलनात्मक अध्ययन किया गया हैं। संग्राम में प्रेमचंद ने कई समस्याओं को उभारा है, जैसे-

क- जमींदारों की लोलुपता, सज्जनता का बाह्य प्रदर्शन, निरंकुशता।

ख- पुलिस का भ्रष्टाचार, थानेदारों, कानिस्टेबिलों, सिपाहियों के अत्याचार, लूट-खसोट, घूस, बेगार, लात और घूँसे।

ग- किसानों की बेबसी, घोर निर्धनता, गुलामी, अन्याय, दुःख और पीड़ा।

घ- साधुओं का मायाचार, पाखण्ड, धूर्तता और आचरणहीनता।

ङ- स्त्रियों में फैली हुई संकुचितता, मूढ़ता, रुढ़िवादिता, पुत्र-कामना के लिए अपने चरित्र की अवहेलना, पाखण्डी साधुओं द्वारा ठगे जाना।

च- कामवासना की चपेट, कलुषित प्रेम का नारकीय अग्निकुण्ड, संयमशील व्यक्तियों का भी वासना चक्र में फँस जाना।

छ- धीरे-धीरे गाँवों में आती हुई जागृति, राष्ट्रीय भावना, अधिकारों की भावना, गाँधी जी का प्रभाव, प्राचीन आदर्शों की रक्षा इत्यादि।

संग्राम में जमींदार-किसान समस्या को उजागर किया गया है। सबलसिंह बड़े दयालु और साधुवादी प्रकृति के जमींदार हैं। गाँव में उनका बहुत मान और सम्मान है, पर हलधर किसान की सुन्दरी पत्नी को देखकर आसक्त हो जाते हैं। पराई स्त्री के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर वासना के उद्गम प्रवाह में प्रवृत्त हो जाने

से न जाने कितने लोगों की और न जाने क्या-क्या भीषण हानियाँ हो जाती हैं, इसका उल्लेख हमें सदियों से मिलता चला आ रहा है। यह सब जानते हुए फिर भी वासना के प्रवाह में बह ही जाते हैं। सबल सिंह उस सुन्दरी के पति को षड्यंत्र रचकर जेलखाने में भिजवा देता है, उसकी पत्नी राजेश्वरी को शहर में अलग मकान में लाकर रख देता है। वहाँ उसका भाई कंचनसिंह भी उसके रूप-लावण्य को देखकर मोहित हो जाता है। यहीं से दोनों भाइयों में ईर्ष्या और द्वेष की भावना पनपती है। सबलसिंह, कंचनसिंह को मारने की योजना बनाता है। उधर गाँव में हलधर को गाँववाले की तरफ से कर्ज मिल जाता है और वह जेलखाने से बाहर आ जाता है। हलधर भी जमींदार की कत्ल करने की योजनाएँ बनाता है। राजेश्वरी की कुशलता से अंत में दोनों भाइयों में मिलन हो जाता है। सबलसिंह की पत्नी आत्महत्या कर लेती है। व्यभिचार, दुराचार और वासना के वश में हो जाने से एक विवेकी पुरुष की भी क्या दुर्गति होती है, यह नाटक के अंत में संभवतः दिख ही जाता है। काम के आवेग में बुद्धि, विद्या, विवेक सब किस तरह से साथ छोड़ देते हैं; इससे यह प्रकट हो जाता है।

"संग्राम गामीण जीवन का सर्वांगपूर्ण चित्र है, जिसमें सभी तरह के व्यक्ति हैं। ऐसे मूर्ख जिनकी आँखों पर पर्दा पड़ जाता है, जो आन-अस्मत की परवाह नहीं करते, ---------- इन्हीं में फत्तू जैसे आदर्शवादी किसान भी हैं और बाबा चेतनदास जैसे कुटिल धोखेबाज साधु-संयासी लोग भी, जो बहू-बेटियों की इज्जत लेने की योजनाएँ बनाया करते हैं। इस ग्रामीण जगत की स्त्रियाँ भी विविध रूपों की हैं।"[९]

'संग्राम' भाइयों के परस्पर संघर्ष के कथानक खड़ी की गई एक कहानी है। चेतनदास के शब्दों में, "भूमि, धन और नारी के लिए संग्राम करना क्षत्रियों का धर्म है। इन वस्तुओं पर उन्हीं का अधिकार है, जो अपने बाहुबल पर उन्हें जीत सके। इस संग्राम में दया और धर्म, विवेक और विचार, मान और प्रतिष्ठा - सभी कायरता के पर्याय हैं।" इस नाटक में परस्त्री (जो तीसरे की पत्नी है।) के लिए दो भाई आपस में लड़ते हैं और एक दूसरे के खून के प्यासे भी हो जाते हैं। वासना के वशीभूत होकर इंसान समाज में कितने भयानक पाप कर बैठता है, यह इस नाटक से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है।

कामोत्तेजना के विवेचन में प्रेमचंद खुद-ब-खुद मनौवैज्ञानिक होते दीखते हैं। एक नारी को पाने के लिए तीन-तीन पुरुष संघर्षरत होते इस नाटक में दिखाए गए हैं - सबलसिंह, कंचनसिंह और हलधर। सबलसिंह तो पूरी तरह से तबाह ही हो जाता है। "सबल को प्रतीक मानकर नाट्यकार मानव मन की एक कमजोरी प्रदर्शित की है - संयमी, धर्मात्मा तथा परोपकारी व्यक्ति तक के मन में जब कामोत्तेजना प्रवाहित हो जाती है, तो विकारवश उसकी कैसी दुर्दशा हो जाती है। जैसे प्रबोध बालक को बार-बार मना करो, तो वह वही बार-बार करता है। उसी प्रकार सबलसिंह जानते-बूझते इसी अग्नि में जलते रहते हैं। मन की शुभ प्रेरणाओं से वे हतोत्साहित नहीं होते, वरन और भी उत्तेजित होते जाते हैं।"[10]

स्वयं सबलसिंह के मन में संघर्ष होता है कि, शुभ और अशुभ, सत् और असत् का कैसा युद्ध चल रहा है - "राजेश्वरी का उद्धार करने का विचार तो केवल भ्रांत है। मैं उसकी अनुपम रूप-छटा, उसके सरल व्यवहार और उसके निर्दोष अंग-विन्यास पर आसक्त हूँ - मैं काम-वासना की चपेट में आ गया हूँ और किसी तरह से मुक्त नहीं हो सकता। खूब जानता हूँ कि यह महाघोर पाप है। आश्चर्य होता है कि इतना संयमशील होकर भी मैं उसके दाँव में कैसे आ पड़ा। कलुषित प्रेम? पापाभिनय। भगवन्। उस घोर अग्निकुण्ड से मुझे बचाना - यह पाप-पिशाच मेरे कुल का भक्षण कर जाएगा।"[11]

राजेश्वरी अपने आप को बहुत ही संयमी और निष्ठावान समझती है परन्तु वह भी एक बार सबलसिंह की तरफ आकर्षित हो ही जाती है। कंचनसिंह का हाल उस तरह से हो जाता है जैसे किसी बाँध को रोक दिया जाय और बाँध के टूट जाने के बाद आस-पास की सब चीजों को अपने साथ बहा ले जाता है। नारी के चंचल सौन्दर्य, रूप-लावण्य पर इस कदर मोहित हो जाते हैं कि उसका पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन सब छूट जाते हैं। सौन्दर्य उनके बुद्धि विवेक को हर लेता है। बाबा चेतनदास भी काम-वासना के चक्कर में पड़कर अपना ज्ञान खो बैठते हैं और ज्ञानी के सामने उनकी खोखली-लीला का अन्ततः भण्डाफोड़ हो ही जाता है। ज्ञानी साधु के झाँसे में आकर अपने कुल को कलंक लगा बैठती है, अंत में आत्मग्लानि के भार से वह आत्महत्या कर लेती है। इस पूरे नाटक में वासना के अनियंत्रण के फलस्वरूप होने वाली भंयकर सामाजिक हानियाँ चित्रित की गई हैं।

संग्राम में चित्रित ग्राम्य झुनिया दुखी, शोषित अधिकारियों से आतंकित, सरकार के डर से दबी हुई, दरिद्रतापूर्ण पर भविष्य की ओर आशा से देखती है। प्रायः अक्सर ही उसे एक-न-एक बेगार, कभी बेदखली, कभी जाफा, कभी कुड़की जमींदार के आदमियों के कारण उनके छप्पर पर कुम्हड़-कद्दू तक नहीं बचने पाते। सिपाही लोग औरतों और गाँव की लड़कियों को रास्ता चलते छेड़ते हैं। हाकिमों की दावतें की जाती हैं, सामान सारे गाँव के लोगों से ही लिया जाता है। हाकिमों का सत्कार किया जाता है। घुड़-दौड़, पोलों यात्राएँ-क्लब के लिए धन चाहिए, तो गाँव वाले नोच लिए जाएँगे। थानेदारों की अनेकों मनमानियों का जिक्र नाटक में किया गया है।

थानेदार गाँव के एक फाटक पर बैठे हैं। चोरी के माल की तफ़तीश की जा रही है। कई कांस्टेबिल वर्दी पहने हुए खड़े हैं। घरों में खाना तलाशी हो रही है। घर की सब चीजें देखी जा रही हैं। जो चीज जिसको पसन्द आ रही है उठा लिए जा रहे हैं और औरतों के शरीर से गहने भी उतरवा लिए जाते हैं। नाटक के कुछ संवाद जो इस प्रकार से हैं, लोग अपना आक्रोश व्यक्त कर रहे हैं -

फत्तू- इन सब जालिमों से खुदा बचाए।

एक कृषक- आए है अपना पेट भरने के लिए। बहाना कर दिया कि चोरी के माल का पता लगाने आए हैं।

हलधर- खानातलाशी काहे की है, लूट है। उस पर लोग कहते हैं पुलिस तुम्हारे जान-माल की रक्षा करती हैं।

राजेश्वरी- पुलिस वाले जिसकी इज्जत चाहे ले लें।

चौथे अंक के दृश्य में गाँव में थानेदार, इंस्पेक्टर और सिपाही ठाकुर साहब को फँसाने के लिए एक हजार की रिश्वत लेकर झूठा सबूत इकट्ठा करने के लिए आते हैं। दो-चार शहादतें बनाकर खाना खाना तलाशी करना चाहते हैं। यह भाग बड़ा ही मार्मिक हैं।

थानेदार- गाँववाले तो सबलसिंह के खिलाफ़ ही होंगे।

इंस्पेक्टर- आज बड़े से बड़े आदमी को जब चाहे फाँस लें। कोई कितना ही मुअज्जिम हो, अफ़सरों के यहाँ उसकी कितनी ही रसाई हो, इतना कह दीजिए कि हुज़ूर वह भी सुराज का हामी है। बस, सारे हुक्काम उसके जानी दुश्मन हो जाते हैं। फिर वह ग़रीब अपनी कितनी ही सफाई पेश करें, अपनी वफादारी के कितने ही सबूत दिया करे, कोई उसका नहीं सुनता - मेरे एक फिकरे ने सबलसिंह का सारा रंग फीका कर दिया। साहब ने फौरन हुक्म दिया कि जाकर उसकी तलाशी लो और कोई सबूत दस्तयाब हो तो गिरफ्तारी का वारंट ले जाओ।

थानेदार- आपने क्या फिकरा जमाया था?

इंस्पेक्टर- महज़ इतना कहा था कि आजकल यहाँ सुराज की बड़ी धूम है। ठाकुर सबलसिंह पंचायतें कायम कर रहे हैं। बस, साहब का चेहरा सुर्ख हो गया। बोले- दगाबाज आदमी है। मिलकर वार करना चाहता है। फौरन इसके खिलाफ सबूत पेश करो।

"गाँव वालों को डाँट-फटकार से बचाया जाता है। मनमाने डरा-धमकाकर झूठे बयान लेकर उनसे जबरदस्ती अँगूठा लगवाया जाता है। फिर कोर्ट में कैसा बयान देना है, इसका भी एक-दो बार अभ्यास भी करा दिया जाता है। मुकदमा बनाने के लिए कुटिलता से काम निकाला जाता है। इसमें पुलिस के झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार, रिश्वत इत्यादि की पोल खोल दी गई है। कृषक-समाज को नोचकर खाने वालों में केवल जमींदार या पुलिस ही नहीं है, सूद पर रुपया देने वाले साहूकार भी हैं। अधिक सूद पर रुपया कर्ज लेने में दोष किसान का भी हैं।"[12]

प्रेमचंद जी ने इस नाटक में किसान की मनोवृत्ति का उल्लेख कंचनसिंह के मुँह से इस प्रकार से कराया है -

कंचन- किसान के लिए तो केवल खेती अच्छी होनी चाहिए। यह फसल अच्छी है, तो तुम लोगों को रुपए की जरूरत होना स्वाभाविक है। मुझे रुपयों का सूद दोगे, लिखाई लोगे, नजराना दोगे, मुनीम जी की दस्तूरी दोगे, दस के आठ लेकर घर जाओगे लेकिन दो महीने नहीं रुक सकते। तुम्हें तो इस घड़ी रुपया की धुन है। तुम जिसे जरूरत कहते हो वह ताव है, जो खेती का रंग देखकर सवार हो गया है।

कुल मिलाकर अगर हम देखे तो संग्राम एक विशाल चित्रपट लिए हुए नाटक है। इस नाटक में ग्रामीण तथा सभ्य समाज का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

प्रेमचंद का 'कर्बला' नाटक (1924) ऐतिहासिक धार्मिक नाटक है। इस नाटक में मुसलमानों की संस्कृति एवं धार्मिक युद्धों को नाटक के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हिन्दुओं के धर्म में जैसे रामायण और महाभारत की कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार से मुसलमानों के जातीय इतिहास में 'कर्बला' को भी धार्मिक युद्ध में वही स्थान प्राप्त है। उर्दू तथा फारसी के साहित्य में इस संग्राम पर यथेष्ट लिखा जा चुका है। जिस प्रकार से हिन्दी कवियों ने राम और कृष्ण की महिमा पर काव्य विरचित कर ज़ीवन धन्य समझा है उसी प्रकार फ़ारसी के कवियों ने मर्सिया करने में ही जीवन समाप्त कर दिया। हिन्दी में पहली बार यह नाटक कर्बला के युद्ध तथा मुस्लिम संस्कृति का चित्रण करता है। हिन्दू-मुस्लिमों वैमनस्य के कारण हिन्दू लेखों की सच्चरित्रों का ज्ञान नहीं। प्रेमचंद इस संकुचितता से परे थे। उनकी दृष्टि में महानता, अच्छाई ही सर्वोत्तम तत्त्व था, फिर चाहे महापुरुष किसी भी धर्म का क्यों न हो?

'कर्बला' पूर्णतया ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में कल्पना के लिए बहुत संकुचित क्षेत्र होता है। घटना जितनी प्रसिद्ध होती है, उतनी ही कल्पना क्षेत्र की संकीर्णता बढ़ जाती है। कर्बला युद्ध की घटना इतनी प्रसिद्ध है कि इस नाटक का एक-एक वाक्य, इसके चरित्रों का एक-एक शब्द हजारों-हजारों बार लिखा जा चुका है। प्रेमचंद जी ने ऐतिहासिक आधारों को कभी भी नहीं छोड़ा है। जहाँ भी किसी रस की आवश्यकता हुई है, वहाँ अप्रसिद्ध और गौण चरित्रों के माध्यम से उसे दर्शाया है। इस नाटक में कुछ हिन्दू पात्रों का भी समावेश किया गया है। इससे पता चलता है कि प्रेमचंद हिन्दू और मुस्लिम एकता पर बल देते थे। यह मात्र प्रेमचंद के कल्पना का कार्य ही नहीं है बल्कि प्रत्युत ऐतिहासिक घटना ही है। आर्य लोग कब और कहाँ पहुँचे आज भी यह विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि महाभारत के पश्चात् अश्वत्थामा के वंशधर वहाँ पर जाकर बस गए थे, अन्य यह भी समझते हैं कि ये लोग हिन्दुओं की संतान थे। जिन्हें सिकन्दर लोदी यहाँ से कैद करके ले गया था। कुछ भी हो इस सत्य के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि कुछ हिन्दू भी हुसैन के साथ

कर्बला के संग्राम में सम्मिलित होकर वीरगति को प्राप्त हुए थे। नाट्यकार प्रेमचंद जी ने ऐतिहासिक आधार को कहीं नहीं छोड़ा है।

'कर्बला' दुखांत नाटक है। दुखांत नाटकों के लिए आवश्यक है कि उनके नायक कोई वीरात्मा हों और उनका शोकजनक अंत उनके धर्म और न्यायपूर्ण विचारों और सिद्धांतों के फलस्वरूप हो। नायक की दारुण कथा दुखांत नाटकों के लिए पर्याप्त नहीं है। उसकी विपत्ति पर हम शोक नहीं करते, वरन् उसकी नैतिक विजय पर आनंदित होते हैं, क्योंकि वहाँ नायक की प्रत्यक्ष हार वस्तुतः उसकी विजय होती है। दुखांत नाटकों में शोक और हर्ष के भावों का विचित्र रूप से समावेश हो जाता है। हम नायक को प्राण त्यागते देखकर आँसू बहाते हैं, किंतु वे आँसू करुणा के नहीं बल्कि विजय के होते हैं। कर्बला में हुसैन के आत्म-बलिदान की कथा है, जो गौरव की वस्तु हैं।[13]

'कर्बला' में नारी-पात्र कम है। डी. एल. राय ने ऐतिहासिक नाटकों में स्त्री-चरित्र की कमी को कल्पना से पूर्ण किया है। राय महोदय के नाटक पूर्णतया ऐतिहासिक हैं। कर्बला ऐतिहासिक ही नहीं धार्मिक भी है। इसलिए इसमें किसी स्त्री-चरित्र की सृष्टि नहीं की जा सकती है।

नाटकों में संगीत का होना अत्यंत आवश्यक होता है। किन्तु प्रेमचंद ने इसे प्रमुखता नहीं दी जो अस्वाभाविक हो जाए। राय महोदय ने अपने नाटकों में गानों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। 'कर्बला' में उत्तेजना या भाव-व्यजंना के लिए गानों का समावेश किया गया है। इतना ही नहीं उर्दू कवियों की ग़ज़लों का प्रयोग भी किया गया है। कहीं-कहीं अनीस के मर्सियों में से दो-चार अंश उद्धृत किए गए हैं। कविवर श्रीधर पाठक जी की भी एक स्तुति का प्रयोग किया गया है। 'कर्बला' की भाषा हिन्दी साहित्य की भाषा नहीं। प्रेमचंद उर्दू साहित्य से हिन्दी में आए थे। उर्दू पर भी इनका असाधारण अधिकार दिखायी देता है। 'कर्बला' की भाषा उर्दू-मिश्रित हिन्दुस्तानी है। शेष नाटकों की भाषा वह है जो साधारणतः सभ्य समाज में प्रयोग की जाती है, जिसे हिन्दू-मुसलमान दोनों ही समान रूप से बोलते और समझते हैं।

प्रेमचंद की एकांकी में निरुपित समस्याएँ

'प्रेम की वेदी' एकांकी में प्रेमचंद ने विवाह समस्या का विवेचन किया है। ईसाई तथा हिन्दू धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन, नारी की दयनीय स्थिति, पुरुषों की भ्रमर मनोवृत्ति, प्राचीन तथा नवीन विवाहों का अंतर, दाम्पत्य प्रेम की विषमताएँ, विपरीत धर्मों के व्यक्तियों के प्रेम तथा उसके दुष्परिणाम, विवाह और धर्म आदि अनेक प्रश्नों की उद्भावना इस नाटक में की गई है।

मिस जेनी जो ईसाई धर्म से ताल्लुक रखती है जो हिन्दू धर्म से संबंध रखने वाले शादीशुदा पुरुष पर आकर्षित हो जाती है। दूसरी तरफ जेनी की माँ मिसेज गार्डन चाहती है कि अपने ही धर्म के लड़के विलियम से विवाह करे। विलियम किसी भी तरह से जेनी के लायक नहीं है। विलियम फूहड़, कायर, हीनत्व की भावना से ग्रसित युवक है। जेनी का आकर्षण उमा के पति योगराज की तरफ बढ़ता ही जाता है। उसी दौरान ही उमा की मृत्यु हो जाती है। जेनी को यह एक अच्छा अवसर प्राप्त होता है और वह योगराज की तरफ बढ़ती ही जाती है। दोनों का प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है लेकिन विपरीत धर्म का होने के कारण वैवाहिक संबंध दोनों में नहीं बन पाता है। इसी वियोग में योगराज की मृत्यु हो जाती है। कुल-मर्यादा एवं धर्म-संकुचितता की बलिवेदी पर यह एक दुखांतपरक घटना पर आधारित है। इसमें प्रेमचंद ने नारी-स्वातंत्र्य, अंतर्जातीय विवाहों तथा सामाजिक रूढ़ियों पर विस्तार से विचार प्रकट किए गए हैं। इन समस्याओं पर अलग-अलग विचार करने की आवश्यकता है।

प्रेमचंद का आदर्शवादी सुधारक स्वरूप इस एकांकी से स्पष्ट हो जाता है। मिस जेनी शिक्षित महिला है। वह विवाह के बंधन में नहीं बँधना चाहती। इसका कारण वह अपनी माँ को निम्न शब्दों में देती हैं -

जेनी- इसलिए की मैं मर्द की गुलामी पसंद नहीं करती।

मिसेज गार्डन- शादी करना गुलामी है? वे सभी औरतें जो शादी करती हैं, क्या गुलाम हैं?

जेनी- गुलाम नहीं तो और क्या हैं? रानियाँ हैं वह भी गुलाम हैं। मर्द की दुनिया वह है, जहाँ धन है, सम्मान है। स्त्री की दुनियाँ वह है, जहाँ पिसना और घुलना और कुढ़ना है। हर काम में मर्द को जवाबदेही करनी पड़ती है। अगर उसने चार पैसे ज्यादा खर्च कर दिए, तो मर्द की त्योरियाँ चढ़ गई। मर्द के नाश्ते में जरा देर हो गई, तो मर्द उसके खून का प्यासा हो जाएगा। अगर किसी मर्द से हँसकर बोली, तो समझ लो उसकी खैर नहीं। दिखाने को तो मर्द, स्त्री की बड़ी इज्जत करता है, लेकिन यह सब शिष्टाचार है। पुरुष दिल में खुद समझता है कि उसने स्त्री की वह चीज छीन ली, जिसकी पूर्ति में वह जितनी खातिरदारी करे, वह थोड़ी है। वह चीज स्त्री की आजादी है।

मिसेज गार्डन- तेरे विचार बड़े विचित्र हैं, जेनी।

जेनी- विचित्र नहीं, यथार्थ हैं। पुरुष विवाह करके स्त्री का स्वामी हो जाता है, स्त्री विवाह करके पुरुष की लौड़ी हो जाती है। अगर वह पुरुष की खुशामद करती रहे, उसके इशारों पर नाचती रहे, तो उसके लिए रुपए हैं, गहने हैं, रेशमी कपड़े हैं - लेकिन जरा भी स्त्री ने स्वेच्छा का परिचय दिया, जरा भी आत्मसम्मान प्रकट किया, फिर वह त्याज्य है, कुलटा है, पुरुष उसे क्षमा नहीं कर सकता। पुरुष कितना भी दुराचारी क्यों न हों, स्त्री जबान नहीं हिला सकती। उसका धर्म है, पुरुष को अपना खुदा समझे। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती।[14]

आज के समाज में विवाह पर स्त्रियों पर कठोर बंधन है। इन बंधनों पर प्रेमचंद ने खुद ही छीटाकशीं की है। भारतीय समाज में स्त्री को घर के अंदर बंद रखा जाता है। बाहर जाने पर नियंत्रण है। घर की चहारदीवारी में बंद रहना - एक धर्म बन गया है। इस विषय पर जेनी आगे कहती है।

जेनी- आदि में स्त्री पुरुष की संपत्ति समझी जाती थी। उसी तरह जैसे पशु, अनाज या घर। जैसे आज जायदाद पर डाके पड़ते हैं, उसी तरह उस समय भी होता था। पुरुष अपनी सूरमाओं को लेकर लड़की के ऊपर छापा मारता, कन्या विजेताओं के घर में कैद हो जाती थी। उसके हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी जाती थीं। पैरों में बेड़ियाँ, गले में तौक। कन्या को उपदेश दिया जाता था कि पति ही तेरा स्वामी है, तेरा देवता है, उसे प्रसन्न रखकर तू स्वर्ग जाएगी। आज उस पाशविक प्रथाओं

का युग बदल गया है अवश्य, किन्तु मूलाधार वहीं है। पुरुषों की मनोवृत्ति अब भी वही है और समाज - संस्था का आधार भी वही है। बिल्कुल वहीं।[15]

अन्तरजातीय विवाह

योगराज हिन्दू होकर ईसाई लड़की जेनी से प्यार करते है, वे बनाए हुए धर्मों के बंधनों को तोड़ना चाहते हैं। लेकिन वही दूसरी तरफ जेनी अपने प्रेमी योगराज को धर्म-संकट में नहीं डालना चाहती। योगराज का हिन्दू-समाज से च्युत होना उससे कदापि बर्दाश्त नहीं हो रहा है। योगराज बंधन और समाज की परवाह नहीं करता। जेनी किसी भी बात पर राजी नहीं होती बल्कि कहती है -

"जिन हालातों में ईश्वर ने हम दोनों को पैदा किया है, उसका एक ही इलाज है कि हम दोनों यह एक-दूसरे से अलग हो जाएँ। तुम्हारे ऊपर यह आक्षेप मैं नहीं सुन सकती कि औरत के पीछे ईसाई हो गया - मैं आजकल के प्रथानुसार शुद्ध होकर तुम्हें उस आक्षेप से बचा सकती हूँ। लेकिन शुद्धि को मैं ढ़ोग समझती हूँ - हवन कर लेने के बाद दो-चार मंत्र पढ़ लेने से मेरे संस्कार नहीं बदल सकते। ईसाई धर्म में बहुत-सी बातें मुझे खटकती है, हिन्दू-धर्म में भी ऐसी बातों की कमीं नहीं है - हिन्दू धर्म में केवल रुढ़ियाँ हैं, केवल पुरानी लकीरें पीटना है। इसके लिए मेरी आत्मा तैयार नहीं। तुम्हारा समाज से निकल जाना मेरे लिए असह्य है। मैं तुम्हें घोर संकट में नहीं डाल सकती।"[16]

धर्म तथा समाज

धर्मों और समाज के नियंत्रण के कारण जेनी और योगराज विवाह के परिणय-सूत्र में नहीं बँध पातें, किसी मानसिक यंत्रणा से योगराज मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। जेनी को बड़ा पश्चाताप है कि वह क्यों रुढ़ियों और अंधविश्वासों के फंदे में पड़ गई। वह कहती है -

जेनी- क्या हर्ज था अगर मैं अपनी शुद्धि करा लेती - उससे समाज को संतोष हो जाता। धर्म-सिद्धांत आदमी के लिए है, आदमी उनके लिए नहीं - मुझे स्वर्ग की विभूति मिल रही थी मामा। मैनें समाज के भय से उसे ठुकरा दिया।[17]

प्रेमचंद ने धर्म की बेड़ियों तथा जटिलताओं को मनुष्य और समाज के लिए हानिकर माना है। 'प्रेम की वेदी' में उन्होंने धर्म की संकीर्णता, जटिलता, सांप्रदायिकता और समाज में उनके द्वारा फैलाए हुए विद्वेष, भेद-भाव की खूब खबर ली है। धर्म के नाम पर जो अत्याचार समाज में चल रहा है, उसकी आलोचना जेनी निम्न शब्दों में करती है -

"मैनें उन्हें क्यों कत्ल कर दिया? उनकी कुल मर्यादा और धर्म की रक्षा के लिए । उन्हें मैनें इन्हीं शब्दों से कत्ल कर दिया। मैंनें नहीं, मेरे धर्म ने कत्ल कर दिया। ---------- लोगों ने इस तरह के मत बनाकर कितना तिल बोया है, कितनी आग लगाई है, कितना द्वेष फैलाया है। क्या धर्म इसीलिए आया है कि आदमियों की अलग-अलग टोलियाँ बनाकर उनमें भेदभाव भर दें? ऐसा धर्म लुटेरों का हो सकता है, स्वार्थियों का हो सकता है, मूर्खों का हो सकता है। ईश्वर का नहीं हो सकता।"[18]

"आज दौलत जिस तरह आदमियों का खून बहा रही है, उसी तरह, उससे ज्यादा बेदर्दी धर्म ने आदमियों का खून बहाकर की है। दौलत कम-से-कम इतनी निर्दयी नहीं होती, इतनी कठोर नहीं होती। दौलत वही कर रही है, जिसकी उससे आशा थी, लेकिन धर्म तो प्रेम का संदेश लेकर आता है और काटता है आदमियों के गले। वह मनुष्य के बीच ऐसी दीवार खड़ी कर देता है जिसे पार नहीं किया जा सकता। आखिर संपूर्ण जगत में एक ही आत्मा तो है। धर्म का यह भेद क्या आत्मा की एकता को मिटा सकता है? वह खुदा जो एक अणु में मौजूद है, उसे हम गिरजें और मसजिदों में बंद कर देते हैं और एक-दूसरे को काफिर और म्लेच्छ कहते हैं। पूछो, उस विश्वात्मा को तुम्हारे झगड़े से क्या मतलब? उसे उसकी क्या परवाह कि तुम गिरजे में जाते हो या मसजिद में। आदमी की शक्ति है कि उस जगदात्मा को टुकड़ों में बाँट सके? उस व्यापक चेतना को। कभी नहीं। यह तो धर्म नहीं।"[19]

संकुचितता एवं मनुष्य के अविवेक द्वारा समाज में अनेक भेद उत्पन्न हुए है - रंग का भेद, नस्ल का भेद और इन सब भेदों को मिटाने का ठेका लिया है नबी नें, महात्मा और संतों ने। लेकिन समाज का सुधरा, उल्टा वह बिगड़ता जा रहा है। इस संकुचित धर्म संबंधी दृष्टिकोण ने हमारे मन को संकीर्ण बना डाला है। प्रेमचंद धर्म के क्षेत्र में इस संकुचित मनोवृत्ति को बुरा समझते थे। इस समस्या पर 'प्रेम की वेदी' में जेनी कहती है - (यहाँ पर धर्मांधता और व्यंग्य दिखाई पड़ता हैं।)

हमारे जितने धर्म हैं, सभी बिगड़े हुए समाज को सुधारने की तदबीरें हैं, लेकिन धर्म पर खुदा की कुछ ऐसी मार है कि वह आते तो हैं सुधार के लिए, लेकिन उल्टे बिगाड़ कर जाते हैं। यही वह पुराने जमाने की गिरोह बंदी है, जब गुफाओं में बसने वाला आदमी हिंसक पशुओं पर अपनी ही जाति की दूसरी टोलियों से अपनी रक्षा के लिए गिरोह बनाकर रहता है। नबी आए, वली आए, अवतार हुए, खुदा खुद आया, बार-बार आया। नतीजा क्या हुआ? लड़ाई और कत्ल। रंग का भेद, नस्ल का भेद - इन सब भेदों को मिटाने का ठेका लिया धर्म ने लेकिन वह स्वयं भेद का कारण बन गया। ऐसे भेदों का, जो सब भेदों से कठोर है - मैं कहती हूँ यह धर्म है जिसने हमारे मन को संकीर्ण बना डाला हैं।"[20]

राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के पात्र

प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य में सभी तरह के कहने का तात्पर्य कि हर समस्याओं से जूझते हुए पात्रों को समेकित किया है। उन्होंने हर किसी पात्र को अपने साहित्य में समान दृष्टि से उचित स्थान दिया है। रैल्फ फाक्स ने नायकत्व की संकल्पना पर विचार करते हुए लिखा है कि नायक के साथ जो मुख्य बात जुड़ी रहती है, वह है मानवीय स्थिति की अपराजेयता। दुर्बलताएँ या स्वार्थ चाहे जैसे भी हों एक अनवरत संघर्ष क्षमता नायक में होनी चाहिए।[21] प्रेमचंद ने स्वयं भी अपने पात्रों पर विचार करते समय लिखा है कि "उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर ले।" कहने की जरूरत नहीं कि प्रेमचंद के चरित्रों का सद्व्यवहार और सद्विचार रैल्फ फाक्स के मानवीय व्यक्तित्व की अपराजेयता और उनकी अनवरत संघर्ष क्षमता का ही पर्याय है। क्योंकि 'सद्व्यवहार' और 'सद्विचार' ही 'अपराजेयता' की शक्ति है।

प्रेमचंद के पात्रों को कुछ भी कहने के पहले यह कहना बहुत ही जरूरी है कि उनके काल्पनिक नहीं बल्कि यथार्थ हुआ करते थे। प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' पढ़ने से हमें पता चलता है कि वे जब भी अपने कहानी, उपन्यास, नाटक, एकंकी, निबंध आदि लिखने का मसौदा तैयार करे थे तो अपने आस-पास के ही समाज से पात्रों का चयन भी कर लेते थे और उस मसविदे में उनका नाम ही दर्ज कर दिया करते थे। इनके पात्र छोटे तबके के हो चाहे बड़े तबके के हो, वे सभी तत्कालीन समाज से ही लिए गए हैं और यथर्थि चरित्र भी है। इसीलिए इनके पात्र तत्कालीन समाज की समस्याओं से लड़ने की शक्ति उनमें दिखाई पड़ जाती है।

यूँ तो प्रेमचंद के प्रमुख चरित्रों की चर्चा मुख्य रूप से होती ही रहती है और यह कहना न होगा कि उनके पात्र अपने समय से लेकर आज तक अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। किन्तु उनके वे पात्र, जिन्हें हम छोटा समझते है वे भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, क्योकि उनके भीतर भी संघर्ष की विस्फोटक ऊर्जा समाहित

है। भले ही कथानक में उनका स्थान बहुत ही थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो, किन्तु वे जिस जमीन को तोड़ते हैं, उसे देखकर हैरान हो जाना पड़ता है।

प्रेमचंद मानवीय सरोकारों के साहित्यकार हैं। मानव-मूल्यों के विरुद्ध किसी भी तरह की हक़तलफी उन्हें पसन्द नहीं है। रघुवीर सहाय के शब्दों में अगर कहें तो -

"हमको तो अपने हक़ मिलने चाहिए

हम तो सारा-का-सारा लेंगे जीवन

कम से कम वाली बात न हमसे कहिए'

दरअसल वे समाज की हक़ की ही लड़ाई लड़ते हैं और इसके लिए वे हर तरह की कुर्बानी देने को तैयार हैं। इस उद्देश्य के लिए ही प्रेमचंद ने अपने प्रमुख चरित्रों का निर्माण किया है। किन्तु जहाँ कोर-कसर रह गई हो, उसको मजबूत और धारदार बनाने के लिए ही उन्होंने बड़े के साथ-ही-साथ छोटे चरित्रों को भी प्रमुखता से स्थान दिया है।

हिन्दू अथवा मुसलमान को हिन्दू पात्रों के समावेश पर होने वाली अप्रसन्नता के लिए लेखक ने स्वयं को दोषी नहीं माना। बात ठीक ही है। इतिहाससम्मत तथ्यों को कोई भी लेखक झुठला नहीं सकता, झुठलाना उचित भी नहीं। प्रेमचंद जी ने स्पष्ट ही लिखा है कि - "रही यह बात कि उनके (हिन्दू पात्रों) समावेश से हिन्दू और मुसलमान, दो में से एक को भी प्रसन्नता न होगी, इसके लिए लेखक क्यों कुसूरवार ठहराया जाय?"[22]

प्रेमचंद जी ने हिन्दुओं की संभावित नाराजगी को उनमें लुप्त होती वीरपूजा की भावना से जोड़ते हुए, इस बात पर चिंता प्रकट की कि यदि ऐसा हुआ तो इसे जाति के अधःपतन का सूचक माना जा सकता है।[23]

जहाँ तक इन हिन्दू पात्रों के नामकरण का सवाल है, प्रेमचंद जी ने वही नाम लिए हैं, जो उन्हें इतिहास से प्राप्त हुए हैं। इसमें भी बड़ी बात यह है कि - हिन्दू पात्रों का योगदान विषयक मुसलमान लेखकों के द्वारा किया गया है - "लेकिन क्योंकि मुसलमान लेखकों का यह अन्वेषण है कि उन्हें उन्हीं के आधार पर

हमने हिन्दू पात्रों का समावेश भी किया है, इसलिए इस विषय में शंका करने का कोई स्थान नहीं रह जाता कि मुसलमान तुष्ट होंगे। यदि मुसलमानों को महान संकट से आर्यों से सहायता पाने पर खेद होता तो वे इसका उल्लेख ही क्यों करते?"[24] इस संबंध में 'जमाना' के संपादक मुंशी दयानारायण निगम से पत्र व्यवहार भी हुआ था जिसमें उन्होंने स्पष्ट करने की कोशिश की कि उन्होंने इतिहास नहीं लिखा है और ऐतिहासिक नाटक में लेखक को साधारण (गौण) पात्रों के चरित्र निर्माण की छूट होती है। "तारीख (इतिहास) और तारीखी ड्रामा (ऐतिहासिक नाटक) में फर्क है, तारीख (इतिहास) तारीखी ड्रामा के खास करेक्टरों (चरित्रों) में तो कोई तगय्युर (परिवर्तन) नहीं कर सकता मगर सानवी करेक्टरों (साधारण पात्रों) में तब्दीली और तरमीम (संशोधन) यहाँ तक कि तखलीफ़ (निर्माण) में भी उसे (ऐतिहासिक-नाटककार को) आजादी है।"[25]

नाटक में हिन्दू पात्रों के समावेश के साथ-साथ यह प्रश्न भी उठा था कि हिन्दू पात्रों को कैसे और किस तरह से नाटकों में समाविष्ट किए जाए और आर्य यहाँ पर आकर कैसे बस गए? जबकि प्रेमचंद ने नाटक की भूमिका में ही यह जानकारी देने की कोशिश की थी कि -"आर्य लोग वहाँ कैसे और कब पहुँचे, यह विवादाग्रस्त है। कुछ लोगों का ख्याल हैं महाभारत के बाद अश्वत्थामा के वंशधर वहाँ जा बसे थे। कुछ लोगों का यह भी मत है, ये लोग उन हिन्दुओं की संतान थे, जिन्हें सिकन्दर यहाँ से कैद कर ले गया। कुछ भी हो, ऐतिहासिक प्रमाण है कि हिन्दू भी हुसैन के साथ कर्बला के संग्राम में सम्मिलित होकर वीरगति को प्राप्त हुए थे।"[26]

संदर्भ-सूचीः-

1- प्रेमचंद एक विवेचन - इन्द्रनाथ मदान ; पृष्ठ-23

2- चिट्ठी पत्री भाग-1 ; पृष्ठ-35

3- चिट्ठी पत्री भाग-1

4- चिट्ठी पत्री भाग-1

5- चिट्ठी पत्री भाग-1

6- चिट्ठी पत्री भाग-1

7- चिट्ठी पत्री भाग-2

8- चिट्ठी पत्री भाग-2

9- प्रेमचंद, संपादक- डॉ. सत्येन्द्र ; पृष्ठ-124

10- प्रेमचंद का नाट्य साहित्य- डॉ.रामचरण महेन्द्र ; सं. - डॉ.सत्येन्द्र ; पृष्ठ-15

11- संग्राम - प्रेमचंद ;

12- प्रेमचंद का नाट्य साहित्य - डॉ.रामचरण महेन्द्र ; सं.-डॉ. सत्येन्द्र; पृष्ठ-117

13- प्रेमचंद का नाट्य साहित्य- डॉ. रामचरण महेन्द्र ; सं.-डॉ. सत्येन्द्र ; पृष्ठ-121

14- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-5

15- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-8

16- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-38

17- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-45

18- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-48

19- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-48-49

20- प्रेम की वेदी - प्रेमचंद ; पृष्ठ-49

21- 'उपन्यास और लोकजीवन' पुस्तक में 'नायक की मृत्यु'-निबंध ; रैल्फ फॉक्स

22- प्रेमचंद : विविध प्रसंग, भाग-2 ; पृष्ठ-358-59

23- प्रेमचंद : विविध प्रसंग, भाग-2 ; पृष्ठ-358-59

24- कर्बला : प्रेमचंद - प्रस्तुति : डॉ. वीणा अग्रवाल; पृष्ठ-18

25- ये पत्र प्रेमचंद के अन्य सभी पत्रों सहित उनके सुपुत्र श्री अमृतराय द्वारा प्रेमचंद विविध प्रसंग शीर्ष तीन खण्डों में संपादित किए गए हैं।

26- कर्बला : भूमिका से ; पृष्ठ-6

with this problem & have only such members as believed in a common language. It should have brought out a magazine in a common language in different scripts. It would have been a real service. At present its activities are communal and it has failed to justify its existence.

Certainly Hindustani is not a literary language in form and magnificence & grandeur. Literary language is supposed to be something apart from the spoken language. I believe in our literary expression coming as near as possible to spoken speech. At least in drama, story & novel we can write in popular language, including biography and travel, and these branches comprise three fourths of literature & that which really matters. Your science & philosophy may be written in Sanskrit or Prakrit — I don't care. As Gasonsee Tassy says 'to drag Hindi to its ancient moorings is the vain effort to turn the river's flow to its source."

About the books I have asked my son to give you an account with whom he deposited the books. You may not be aware; my both children are at Kayastha Pathshala Intermediate School and lodging in the same building as Hindustani Academy. But they are shy extremely which they seem to have inherited from me supposing I am their father. His name is Sripat Rai. If you can send for him and ask an explanation he will tell you what became of the books.

. Lekhak Sangha. Its only fruitful activity is in my opinion cooperative publication, so that every author contributing to its membership may be assured a royalty of 30 to 40%. The Hindi market is so dull and authors are so anxious to get their books published that they will come to any compromise with the publishers. If they stick to their terms & publisher refuses to publish their books, the poor fellows will be nowhere. The analogy is that